भट्टारक कनककुशल और कुअरकुशल

श्री अगरचंदजी नाहटा

जैन मुनियों ने साहित्य एवं समाज की नानाविध सेवाएँ की हैं। उनका जीवन बहुत ही संयमित होता है, अतः उनकी आवश्यकताएँ थोडे समय के प्रयत्न से ही पूरी हो जाने से अन्य सारा समय वे आत्म-साधना, साहित्य-सृजन और पर कल्याण में ही लगा देते हैं। उनका जीवन आदर्श रूप होता ही है और उनके साहित्य में भी लोक कल्याणकारी भावना का दर्शन होता है। अधिकांश मुनि वाणी द्वारा तो धर्मप्रचार करते ही हैं पर साथ ही साहित्य-सृजन द्वारा भावी पीढियों के लिये भी जो महान् देन छोड जाते हैं उसके लिये जितनी कृतज्ञता स्वीकार की जाय, थोडी है।

जनभाषा में धर्मप्रचार व साहित्य–सृजन जैन मुनियों का उल्लेखनीय कार्य रहा है। भारत की प्रत्येक प्रधान प्रान्तीय भाषाओं में रचा हुआ जैन साहित्य इसका उज्ज्वल उदाहरण है। श्वेताम्बर जैन मुनियों का विहार राजस्थान एवं गुजरात में अधिक रहा अतः राजस्थानी एवं गुजराती को तो उनकी बडी देन है ही, पर हिन्दी भाषा के प्रभाव एवं प्रचार ने भी उनको आकर्षित किया। फलतः १७ वीं शताब्दी से उनके रचित हिन्दी भाषा के छोटे बडे ग्रंथ अच्छे परिमाण में प्राप्त होते हैं। ये हिन्दी रचनाएँ विविध विषयों की होने से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनका संक्षिप्त परिचय मेरे "हिन्दी जैन साहित्य" लेख में दिया गया है।

अठारहवीं शताब्दी के अन्त और उन्नीसवीं शती के प्रारम्भ में कच्छ जैसे अहिन्दी भाषी प्रदेश में व्रज भाषा के प्रचार एवं साहित्य-सृजन में दो जैन मुनियों का जो उल्लेखनीय हाथ रहा है, उसका परिचय अभी तक हिन्दी एवं जैन जगत को प्रायः नहीं है। इसलिये प्रस्तुत लेख में भट्टारक कनककुशल और उनके शिष्य कुंअरकुशल की उस विशिष्ट हिन्दी साहित्य सेवा का परिचय करवाया जा रहा है।

कनककुशल नामक एक और तपागच्छीय विद्वान् प्रस्तुत लेख में परिचय दिये जाने वाले कनक-कुशल से १२५ या १५० वर्ष पूर्व हो चुके हैं। उनसे तो जैन संसार परिचित है। वे विजयसेनसूरि के शिष्य थे। उनकी रचित "ज्ञानपंचमी कथा" बहुत प्रसिद्ध है जो संवत् १६५५ में मेडता में रची गई। उनकी अन्य रचनाएँ "जिनस्तुति" (संवत् १६४१), "कल्याणमंदिर" टीका, विशाल लोचन स्तोत्र वृत्ति (संवत् १६५३ सादडी), साधारण जिनस्तव अवचूरी, रत्नाकर पंचविंशतिका टीका, सुरप्रिय कथा (संवत् १६५६), रौहिणेय कथा (संवत् १६५७) में रचित प्राप्त हैं। पर जिन कनककुशल का परिचय आगे दिया जायगा। उनकी जानकारी प्रायः जैन समाज को नहीं है। क्यों कि जैन धर्म सम्बन्धी उनका ग्रंथ नहीं मिलता। उनके गुरु का नाम प्रतापकुशल था। संवत् १७६४ के आसपास से इनके हिन्दी ग्रंथ मिलते हैं। आपके शिष्य कुँअरकुशल ने "लखपतमंजरी" में कविवंश वर्णन में अपनी गुरु परंपरा का परिचय अट्ठइस पद्यों में दिया है। मूल पद्य लेख के अन्त में दिये जायेंगे। यहाँ उनका सार ही दिया जाता है।

कविवंश वर्णन का सार

अन्तिम तीर्थंकर श्रीमहावीर प्रभु के पचपनवें पट्ट पर श्रीहेमविमलसूरि[1] हुए। ये गुरु बड़े

१ इनका जन्म सं. १४३२ दीक्षा १५१८ आचार्यपद १५४८ स्वर्ग सं. १५८३ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपकारी और अबू सैद सुल्तान को प्रतिबोध देनेवाले थे। इनके पट्ट पर कुशलमाणिक्य, फिर सहजकुशल[२] हुए जिनके वचन से बाबर बादशाह ने जजिया-कर छोडा था। इनके पट्ट पर क्रमशः लक्ष्मीकुशल, देवकुशल, धीरकुशल हुए। इनके पट्ट पर शील सत्य धारक और तपस्वी गुणकुशल हुए। फिर प्रतापकुशलजी बडे प्रतापी हुए, जिनका शाही दरबार में सम्मान था। ये चमत्कारी व वचनसिद्धिधारी थे। एक बार औरंगजेब को कोई सिद्धि की बात बतलाई जिससे उसने पालकी और फौज को भेज कर फरमान सहित बुलाया और मिल कर बड़ा खुश हुआ। ये हिन्दी और फारसी भाषा भी पढ़े थे। इन्होंने बादशाह के प्रश्नों के उत्तर समीचीन दिये तथा मन की बातें इष्ट के बल से बतलाई। बादशाह ने दस पांच गाँव दिये पर इन निर्लोभी गुरु के अस्वीकार करने पर पालकी देकर उन्हें विदा किया। इनके पट्ट पर कविराज "कनककुशल" हुए, जिन्हें महा बलवान् महाराज अजमाल व अजमेर का सूबेदार और अन्य राजा लोग मानते थे। नबाब "खानजहाँ" बहादुर तथा जूनागढ के सूबेदार बाबीवंशी शेरखान ने भी इनका बड़ा सम्मान किया। एकबार सारे यति एक ओर तथा ये एक ओर हो गये तो भी तपों के ६५ वें पाट पर इनके मनोनीत पट्टधर स्थापित किये गये। इन्हें राउल देसल के पुत्र कच्छपति लखा कुमार ने गाँव देकर अपना गुरु माना। इनका बहुत से विद्वान शिष्यों का परिवार था जिसमें "कुंअरेस" कवि को नृपति लखपति बहुत मानते थे। कच्छ नरेश के आग्रह से कवि कुंअरेस ने यह "लखपत मंजरी" ग्रंथ बनाया।[३]

जैसा कि उपर्युक्त सार से स्पष्ट है कि कनककुशल और कुँअरकुशल दोनों गुरु–शिष्य कच्छ के रावल लखपत से बहुत सम्मानित थे। कनककुशल को लखपत ने एक गांव देकर अपना गुरु माना था। इस प्रसंग का वर्णन एक फुटकर पद्य में भी पाया जाता है। वह इस प्रकार है:

महाराउ **देसल** वसंद पाटेत सहसकर, उभय पछ आचार शुद्धसंग्राम सूरवर
कलप वृछ कलि मांझि प्रगट जादौं पछिम पति, महिपति छत्रिय मुगट छत्रपति तनवह गुन गति।
लखपति जु राउ लाखनि बकस, कियो **कनक** को श्रम सफल,
सासन गजेन्द्र दीनो सुपिर, पद भट्टारक जुत प्रबल ॥ १ ॥

---

२ सिद्धान्त हुंडी के रचयिता

३ उपर्युक्त विवरण के अनुसार कनककुशलजी का प्रभाव पहले अजमेर जूनागढ़ आदि के शासकों पर था। कच्छभुज पीछे पधारे अतः यह प्रश्न उपस्थित होता है कि वे भुज कब आये? क्योंकि यहाँ आने बाद तो राज्यसन्मान प्राप्त होने से अधिकतर यहीं रहने लगे ऐसा प्रतीत होता है। विचार करने पर यह समय सं. १७८० से ९० के बीच का ज्ञात होता है। लखपत का राज्यकाल १७९८ से १८१७ का है। कच्छ के इतिहासानुसार स्वर्गवास के समय उनकी आयु ४४ वर्ष की थी, अतः लखपत का जन्म सं. १७७३ होना चाहिये। हमीर कवि रचित यदुवंश वंशावलि सं. १७८० ही है। उसमें कुमार लखपत का उल्लेख है। राउल लखपत कुमार अवस्था में भी बड़े कला व विद्याप्रेमी थे। उनके रचित १ शिवव्याह एवं लखपत शृंगार ये दो ग्रन्थ हैं। कच्छकलाधर में आप के रामसिंह मालम द्वारा उद्योग धन्धों व कला की हुई उन्नति का उल्लेख है। मीना व काच आदि के हुनर के लिये कच्छ देश सर्वत्र विख्यात है लिखा गया है। लखपत एवं कनककुशलजी के सम्बन्ध में कच्छकलाधर के पृ. ४३४ में लिखा है कि "महाराओ श्री लखपते कलानी माफक विद्याने पण खूब आश्रय आपेल छे। तेमणें पोते भट्टारकजी कनककुशलजी पासेथी वज्रभाषाना ग्रन्थोनो सारो अभ्यास कर्यो हतो अने तेमनी ज देखरेख नीचे तेमणे जे व्रजभाषा शीखवानी हिन्दभरमां अजोड़ एने एक उत्तम प्रकारनी संस्थानी स्थापना करी छे। आ शाळा आज पण कच्छभुजमां हस्ति धरावे छे अने दूर दूरथी चारण बाळको पिंगल आदि शास्त्रोनो अभ्यास करवा अहीं आवे छे तेमने खोराकीपोसाकी सहित व्रजभाषानुं शिक्षण आपवामां आवे छे। महाराओ श्री लखपत विद्वान होतां छतां अत्यन्त विलासी हता।"

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देसल राउ को नंद **लखपति** जीवौ शतानंद के जु सौलौं
राज करौ महिमंडल इकु छत्र शशि रवि सागर तौंलौं
शासन दीनो अभंग सुमेरु सो तोहि वखान करे कवि कौलौ
साचो **भट्टारक** कीनो **कनक** कनक के पाट परंपर जौंलौ।

अर्थात्—राउल लखपति ने कनक कुशल को गाँव का पट्टा और हाथी दिया और साथ ही भट्टारक पद भी। ग्रामका शासन कनककुशल के शिष्यपरंपरा तक का था।

कच्छ के इतिहास में लिखा है कि कनककुशलजी से लखपत ने व्रज भाषा के ग्रन्थों का अभ्यास किया था और उन्हीं के तत्त्वावधान में छन्द एवं काव्यादि के शिक्षण के लिये एक विद्यालय स्थापित किया था। उस विद्यालय में किसी भी देश का विद्यार्थी व्रज भाषा के ग्रन्थों का अभ्यास करने आता तो उसे दरबार की ओर से पेटिया (भोजन सामग्री) देने की व्यवस्था की गई थी। इसलिये भाट चारणों के लड़के दूर दूर से यहाँ अध्ययन के लिये आते थे[1]। आत्माराम केशवजी द्विवेदी के कच्छ देश के इतिहास के अनुसार यह विद्यालय संवत् १९३२ तक कनककुशल की परंपरा के भट्टारक जीवनकुशलजी की अध्यक्षता में चल रहा था। यद्यपि अब भी एक ऐसा ही विद्यालय चारणों की देखरेख में चल रहा है पर वह वही है या उससे भिन्न, निश्चित ज्ञात नहीं है। करीब डेढ सौ वर्षों तक वज्रभाषा के प्रचार व शिक्षण का जो कार्य इस विद्यालय द्वारा हुआ वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

हिन्दी साहित्य के परिचायक ग्रन्थ मिश्रबंधु विनोद के पृ. ६६७ में कनककुशल और कुँअरकुशल को भाई एवं जोधपुर निवासी बतलाते हुए इनके 'लखपत जस सिंधु' ग्रंथ का उल्लेख किया है। पर वास्तव में वे गुरु-शिष्य थे व जोधपुर निवासी नहीं थे। हमारे अन्वेषण में उन दोनों के और भी अनेक ग्रंथों का पता चला है जिनका परिचय आगे कराया जायगा। कुछ फुटकर पद्यों में कनककुशल का यशवर्णन पाया जाता है जिनमें से कुछ यह हैं:

पंडित प्रवीन परमारथ के बात पाऊं, गुरुता गंभीर गुरु ज्ञान हुँ के ज्ञाता हैं
पांचु व्रत पालै राग द्वेष दोऊं दूर टालै, आवै नर पास वाकुं ज्ञान दान दाता हैं
पंच सुमति तीन गुपति के संगी साधु, पीहर छः काय के सुहाय जीव त्राता हैं
सुगुरु **प्रताप के** प्रताप पद भट्टारक, **कनककुशलसूरि** विश्व में विख्याता है।

भट्टारक के भाव तें, ग्रंथ बडे की बूझि।
गीत कवित्त अरु दोहरा, सबै परत मन सूझि।
आनन सोहत बानि सदा, पुनि बुद्धि घनि तिहुँ लोकनि जानि
पिंगल भाषा पुरातनि संस्कृत तो रसना पे इती ठहरानि।
साहिब श्री **कनकेश भट्टारक**, तो वपु गजे सदा रजधानी
जौं लौं है सूरज चंद्र रु अंबर, तौं लौं है तेरे सहाय भवानी।

राज्याश्रय के कारण कनककुशल की शिष्यपरंपरा ने हिन्दी साहित्य के सृजन और शिक्षण में विशेष सफलता प्राप्त की। कच्छप्रदेशवर्त्ती मानकुआ गांव ही संभवतः इनकी जागीरी में था इसलिये वहां इनकी शिष्य सन्तति द्वारा लिखित अनेक प्रतियाँ देखने को मिली हैं। इस विद्वद् परंपरा का वहाँ अच्छा ज्ञान भंडार

१ कच्छ कलाधर, भाग २, पृ. ४३४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

था जिसकी प्रतियाँ गत २।३ वर्ष में ही बिक कर कुछ तो मुनि जिनविजयजी से खरीदी जाकर राजस्थान पुरातत्व मंदिर, जयपुर के संग्रह में चली गई। अवशेष मुनिवर्य पुण्यविजयजी के द्वारा खरीदी जाकर पाटन के हेमचंद्र-सूरि ज्ञान मंदिर में संग्रहीत हो चुका हैं। राजस्थान पुरातत्व मंदिर से, ढाई वर्ष पूर्व आबू समिति के प्रसंग से यहाँ जाने पर मैं कुछ प्रतियाँ लाया था और उन में से तीन का परिचय "जीवन साहित्य" के मार्च, जून १९५३ में प्रकाशित किया गया था! तदनन्तर अहमदाबाद के इतिहास सम्मेलन की प्रदर्शिनी में पुण्यविजय जी द्वारा संग्रहीत प्रतियें देखने को मिलीं। उन्हें मंगवा कर विवरण ले लिया गया। यहाँ इन दोनों स्थानों से प्राप्त कनककुशल, कुँअरकुशल और लक्ष्मीकुशल की हिन्दी रचनाओं का क्रमशः परिचय दिया जा रहा है।

भट्टारक कुंवरकुशल के हिन्दी ग्रन्थ

१. **लखपतमंजरी नाममाला** : इसकी पद्य संख्या २०२ है। प्रारम्भ में भुजनगर और महारावल लखपत के वंश का वर्णन १०२ पद्यों तक में दिया गया है। फिर नाममाला प्रारम्भ होती है जो २०० पद्यों तक चलती है। अंतिम दो पद्य प्रशस्ति के रूप में हैं। इसकी दो प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं, जिनमें पाटणवाली पहली प्रति में पद्य-संख्या २०५ है, पत्र-संख्या १४। इसकी प्रशस्ति इस प्रकार हैं: "इति श्रीमन् महाराउ श्री देशलजी सुत महाराज कुमार श्री सात श्री लखपति मंजरी नाममाला सम्पूर्ण॥ सकल पंडित कोटि-कोटीर पंडितेन्द्र श्री १०८ श्री प्रतापकुशल-ग. शिशुना **कनककुशलेन रचिता।** संवति १७९४ बरसे आसाढ सुदी ३ सोमे।" इससे रचनाकाल १७९४ सिद्ध होता है। दूसरी प्रति जयपुरवाली संवत १८३३ की लिखित है। उसमें पद्य २०२ हैं।

रावल लखपति के नाम से रचे जाने के कारण इसका नाम 'लखपत-मञ्जरी' रक्खा गया। आदि-अन्त इस प्रकार है:

विबुध वृन्द वंदित चरण, निरुपम रूपनिधान।
अतुल तेज आनन्दमय, वंदहु हरि भगवान॥ १॥

अन्त: लखपति जस सुमनस ललित, इकबरनी अभिराम।
सुकवि **कनक** कीन्ही सरस, नाम-दाम गुण धाम॥ १॥
सुनत जासु है सरस फल, कल्मस रहै न कोय।
मन जपि **लखपतिमंजरी,** हरि दरसन ज्यों होय॥ २॥

२. **सुन्दर शृंगार की रसदीपिका भाषा टीका** : शाहजहाँ के सम्मानित महाकविराज सुन्दर के रचित सुन्दर शृंगार की यह भाषाटीका लखपति के नाम से ही रची गई। इसका परिमाण २८७५ श्लोकों का है जिनमें मूल पद्य तो ३६५ ही हैं। इसकी दो प्रतियां पाटन से प्राप्त हुई हैं जिनमें एक के अन्तमें "इतिश्री सुन्दर शृंगारिणी टीका भट्टारक श्रीकनककुशलसूरिकृत संपूर्णः" लिखा है इससे टीकाकार कनककुशल सिद्ध होते हैं, अन्यथा प्रशस्ति में तो कुंवर लखपति द्वारा रचे जाने का उल्लेख है। यथा अथ टीकाकृत दोहा—

यह सुंदर सिंगार की, रसदीपिका सुरंग।
रची देशपति राउ सुत, लखपति लहि रसअंग॥ १॥

टीका: यह सुन्दर कविकृत सुन्दर सिंगारकी टीका रसदीपिका नांउं।
सुरंग भले रंग की रचि कहा बनाई महाराउ।
देशपति कहा कछु देशपति श्री देशल जू सुत कुंवार **लखपति** ने
लहि रस अंग पाइके रसमय कही रसिक अंग १।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति श्री सुन्दर सिणगार नी टीका भट्टारक श्री कनककुशल सूरि कृत सम्पूर्ण ॥

यह टीका श्री लखपत के कुमारावस्था में ही रची गई। अतः संवत १७६८ से पहले की है। भट्टारक कनककुशल के ये दो ग्रन्थ ही मिले हैं पर अभी और खोज की जानी आवश्यक है। सम्भव है कुछ और रचनायें भी मिल जायें।

भट्टारक कनककुशल के हिन्दी ग्रन्थ

कुंवरकुशल कनककुशलजी के प्रधान शिष्य थे। वैसे उनके कल्याणकुशल आदि अन्य शिष्य भी थे। पर उनकी कोई रचना नहीं मिलती। महाराव लखपत और उनके पुत्र गौड़ दोनों से कुंवरकुशल सम्मानित थे। इन दोनों राजाओं के लिए इन्होंने ग्रन्थ-रचना की। जिनका समय संवत १७६४ से १८२१ तक का हैं। कुंवरकुशलजी की लिखी हुई कई प्रतियाँ पाटन से प्राप्त हुई थीं। जिनमें पिंगलशास्त्र (संवत १७६१), पिंगलहमीर (सं. १७६५), लखपतिपिंगल (सं. १८०७), गोहड़पिंगल (सं. १८२१) की लिखित हैं। ये कोश, छन्द, अलंकार आदि के अच्छे विद्वान थे। इन तीनों विषयो के आप के पाँच हिन्दी ग्रन्थ मिले हैं। जिनका परिचय इस प्रकार है।

१. **लखपति मंजरी नाममाला :** इसकी एक ही प्रति बारह पत्रों की जयपुर से प्राप्त हुई। जिसमें १४६ पद्य हैं। प्राप्त अंश में १२१ पद्यों तक लखपत के वंश का ऐतिहासिक वृत्तान्त है और पिछले २८ पद्यों में कवि-वंश वर्णन है। मूल नाममाला का प्रारम्भ इसके बाद ही होना चाहिए जो प्राप्त प्रति में लिखा नहीं मिलता। संवत १७६४ के आसाढ सुदी २ को इनके गुरु ने इसी नाम का ग्रन्थ बनाया और उसके कुछ महीने पश्चात ही संवत १७६४ के माघ बदी ११ को इस नामवाले दूसरे ग्रन्थ की रचना उनके शिष्य ने की। यह विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इसकी पूरी प्रति प्राप्त होने पर ग्रन्थ कितना बड़ा है, पता चल सकेगा।

महारावल लखपति के कथनानुसार ही इस नाममाला की रचना हुई है। आदि अन्त के कुछ पद्य इस प्रकार है :

आदि : सुखकर वरदायक सरस, नायक नित नवरंग।
लायक गुनगन सौं ललित, जय शिव गिरिजा संग ॥ १ ॥

अन्त : करि **लखपति** तासौं कृपा, कह्यौ सरस यह काम।
मंजुल **लखपति मंजरी**, करहु नाम की दाम ॥ ४८ ॥

तव सविता को ध्यान धरि, उदित कयों आरंभ।
बाल बुद्धि की वृद्धि कौं यह उपकार अदंभ ॥ ४६ ॥

२. **पारसात नाममाला :** यह फारसी भाषा के पारसात नाममाला का व्रजभाषा में पद्यानुवाद है। पद्य संख्या ३५३ है। इससे कुंवरकुशल के फारसी भाषा के ज्ञान का पता चलता है। इसकी भी एक ही प्रति जयपुर-संग्रह से प्राप्त हुई है जो सं. १८२७ की लिखित है।

किय लखपति कुंअरेस कौं, हित करि हुकम हुजूर।
पारसात है पारसी, प्रगटहु भाषा पूर ॥ ६ ॥

बंछित वरदाता विमल, सूरज होहु सहाय।
पारसात है पारसी, व्रज भाषा जु बनाय ॥ १० ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरज सशि सायर सुधिर धुअ जोलौं निरधार।
तो लौं श्री **लखपत्ति** कौं, पारसात सौं प्यार ॥ ५३ ॥

इति श्री पारसात नाममाला भट्टारक श्री भट्टारक **कुंवरकुशलसूरिकृत संपूर्णः**

मूल पारसी ग्रन्थ का एक पद्य का अनुवाद यहाँ दिया जाता है:

खुदा के नाम, दावर खालक है खुदा-रब्बं कीजु रुसूल।
अलखें जोति भखें कहै, मर्घन जगत को मूल ॥ १ ॥

३. **लखपति पिंगल :** यह छंद ग्रन्थ लखपति के नाम से रचा गया है। इस की संवत १८०७ के पौष बदी ८ भोम वार को स्वयं कुंवरकुशल के लिखित ७१ पत्रों के प्रति पाटन भण्डार से प्राप्त हुई है। आदि अन्त इस प्रकार है :

आदि : साचै सूरयदेव की, करहु सेव **कुंवरेस**
कविताई है कामकी, अधिक बुद्धि उपदेस ॥ १ ॥

अन्त : गोरीपति गुन गुरु, कछ देस सुखकर
सूर चंद जो लौं थिर, लख**धीर** देत बर ॥ ६० ॥

गुरु जब किरपा की गुरव, सुरज भये सहाय
तब लखपति पिंगल अचल, भयो सफल मन भाय ॥ ६१ ॥

४. **गौड़पिंगल :** लखपति के पुत्र रावल गौड़ के लिए छंदशास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया गया है। संवत १८२१ अक्षय तृतीया में इसकी रचना हुई। और उसी समय की वैसाख शुक्ल १३ ग्रन्थकार की स्वयं लिखी कृति पाटन भण्डार से प्राप्त हुई। लखपति पिंगल से यह ग्रंथ बड़ा है। इसमें ३ उल्लास हैं। आदि अंत इस प्रकार है :

आदि : सुखकर सूरज हो सदा, देव सकल के देव।
कुंवरकुशल यातैं करै, सुभ निति तुमपय सेव ॥ १ ॥

अन्त : अट्ठारह सत ऊपरै, इकइस संवति आहि।
कुंवरकुशल सूरज कृपा, सुभ जस कियो सराहि ॥ ६४४ ॥

सुदि वैसाखी तीज सुभ, मंगल मंगलवार।
कछपति जस पिंगल कुंवर, सुखकर किय संसार ॥ ६४५ ॥

५. **लखपति जस सिन्धु :** यह अलंकार शास्त्र तेरह तरंगों में रचा गया है। महाराजा लखपति के आदेश से इसकी रचना हुई। आदि–अन्त इस प्रकार है:

आदि : सकल देव सिर सेहरा, परम करत परकास।
सिविता कविता दे सफल, इच्छित पूरै आस ॥ १ ॥

अन्त : कवि प्रथम जे जे कहे, अलंकार उपजाय।
कुंवरकुशल ते ते लहे, उदाहरण सुखदाय ॥ ८२ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इति श्रीमन्त महाराज लक्षपति आदेशात सकल भट्टारक पुरन्दर म. श्री कनककुशलसूरि शि. कुंवरकुशल विरचिते, लक्षपति जससिन्धु शब्दालंकारार्थालंकार त्रयोदश तरंग। चुरु के यतिजी के संग्रह में इसकी प्रति देखी थी।

६. लखपति स्वर्ग प्राप्ति समय : संवत १८१७ में महाराव लखपति जेठ सुदी ५ को कालधर्म प्राप्त हुए। जिसका वर्णन कवि ने ६० पद्यों में किया है। इस की एक ही प्रति जयपुर संग्रह से प्राप्त हुई है। आदि अंत इस प्रकार हैं:

आदि : दौलति कविता देत है, दिन प्रतिदिन कर देव
कविजन याते करत हैं, सुकर-सफल सुभचेव ॥ १ ॥

अन्त : यह समयो लखधीर को, कौ सुनै पढ़ै सुज्ञान
सकल मनोरथ सिद्धि हैं, परमसुधारस पान ॥ ६० ॥

प्रति में लेखक ने इसे "महाराज लखपतिजीना मरसिया" की संज्ञा दी है। जो उचित ही है।

७. महाराउ लखपति दुवावैत : इसकी प्रति ओलिये के रूप की हालही में मुनि श्री पुण्य-विजयजी की कृपा से प्राप्त हुई है। यह वर्णनात्मक खड़ी बोली हिंदी गद्य काव्य है। लगभग ५०० श्लोक परिमित यह रचना 'दुवावैत' संज्ञक रचनाओं में सबसे बड़ी और विशिष्ट है। वर्णन की निराली छटा पठते ही बनती है। आदि-अंत इस प्रकार है :

आदि : अहो आवो बे यार, बैठो दरबार।
ये चंदनी राति, कहो मजलसि की बाति।
कहो कौन कौन मुलक कौन राजा कौन देखे,
कौन कौन पातस्था देखे।

अन्त : जिनिकी नीकी करनी, काहू तैं न जाय बरनी।
अतुल तेज उछहतै च्यारों जुग अमर,
यह सदा सफल असी देत कवि **कुंअर** ॥

इतिश्री महाराउ लखपति दुवाबैल संपूर्ण ॥

८. मातानो छन्द : यह तीस पद्यों का है। कच्छ के राजाओं की कुलदेवी आसापुरा की इसमें स्तुति की गयी है। इसकी दूसरी संज्ञा "ईश्वरी छंद" भी है। इसकी भाषा डिंगल है। आदि-अन्त इस प्रकार है:

आदि : बड़ी जोति ब्रह्माण्ड अम्बा विख्याता। तुमै आसपूरा सदा कच्छ त्राता ॥
रंग्या रंग लाली किया पाय राता। भजो श्रीभवानी सदा सुक्ख दाता ॥ १ ॥

अन्त : करी भटारक बीनती, धरो अम्बिका कान।
कुंअर कुशल कवि नै सदा, द्यो सुख-संपति दान ॥ ३० ॥

२६ वें पद्य में भुजपति गौहड़राव और उनके पुत्र कुंवर रायधन का उल्लेख है। अतः यह रचना परवर्ती ही है। खोज करने पर कुंवरकुशल के अन्य ग्रन्थ भी मिलने सम्भव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि राज्याश्रय प्राप्त होने के कारण इन्होंने अपनी रचना के प्रारम्भ में कहीं भी जैन तीर्थंकर आदि की स्तुति नहीं कर सूर्य, देवी और शिवशक्ति जो राजा के मान्य थे, उन्हींकी मंगलाचरण में स्तुति की है।

इन दोनों गुरु-शिष्यों का भट्टारक पद एवं सूरि-विशेषण भी विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करत है। जैन परम्परा के अनुसार ये दोनों पद विशिष्ट गच्छ नायक आचार्य के लिए ही प्रयुक्त होते हैं। पर भट्टारक पद तो यहाँ राउ लखपति के प्रदत्त है। सूरि पद उसीसे संबंधित होने से प्रयुक्त कर लिया प्रतीत होता है। जैनपरम्परा के अनुसार उनका पद पन्यास ही था।

इन भट्टारक द्वय की परम्परा का प्रभाव व राज्यसंबंध पीछे भी रहा है। यद्यपि पीछे कौन कौन ग्रन्थकार हुए, ज्ञात नहीं हैं। उल्लेखनीय रचनाओं में लक्ष्मीकुशल रचित पृथ्वीराज विवाह ही है, जो संवत् १८५१ एवं ५२ पद्यों में रचा गया है। इस की २ प्रतियां जयपुर से प्राप्त हुई थीं। आदि अन्त इस प्रकार हैं:

आदि: संवत् अट्ठारसें एकावन वैशाख मास वदि दसम दिन्न।
हिय हरष व्यापि थाप्यो जु व्याह अवनी कछ लोक तिहु उछाह ॥ १ ॥

अन्त: भोजन कीन्हे बहु भांति भांति पावत जुव राति बैठ पांति।
परस परी करी पहरावनीय भई बात सबै मन भावनीय ॥ ५० ॥

इति श्री महाराउ कुमार श्री **प्रथीसिंह विवाहोत्सव : पँ. लिखमीकुशल कृत संपूर्णः ॥**

ये पृथ्वीराज महाराउ लखपत के पुत्र गौड़ के पुत्र थे। इन के बड़े भाई रायधनजी गद्दी पर बैठे।

कनककुशल की परंपरा में और भी कोई ग्रन्थकार हुए हों तो उनकी कोई बडी रचना मुझे प्राप्त न हो सकी। जयपुर संग्रह से प्राप्त एक गुटके में, जो उसी परम्परा के ज्ञानकुशल शिष्य कीर्तिकुशल का लिखा हुआ है, उसमें कुछ फुटकर रचनाएं अवश्य मिली हैं। जिनमें 'भाईजीनो जस' नामक रचना उपरोक्त पृथ्वीराज की प्रशंसा में लक्ष्मीकुशल के रचित फुटकर पद्यों के रूप में हैं। इसी प्रकार गंगकुशल रचित सात श्लोकों का एक स्तोत्र और अन्य कई कवियों की लघु कृतियाँ हैं। उनमें कुछ पद्यों के रचयिता का नाम नहीं है। और कुछ नामवाले कवियों का इस परम्परा से क्या सम्बन्ध रहा है, पता नहीं चल सका, इसलिए यहाँ उनका उल्लेख नहीं किया जा रहा है। यह गुटका सं. १८८८ में ज्ञानकुशल के शिष्य कीर्तिकुशल ने मानकुंआ में मुनि गुलालकुशल और रंगकुशल के लिए लिखा। इसके बाद की परम्परा के नाम ज्ञात न हो सके।

इस परम्परा के यतिजी के ज्ञानभण्डार की समस्त प्रतियाँ के अवलोकन करने पर संभव है और भी विशेष एवं नवीन जानकारी प्राप्त हो। अन्य विद्वानों से अनुरोध है, कि वे अपनी विशेष जानकारी प्रकाश में लाएं।

लखपतमञ्जरी का कविवंश वर्णन

राजेसुर पहिलैं **रिषभ**, साधि जोग शुभ ध्यानु।
ज्योतिरूप भये ज्योतिमिति, विमलज्ञान भगवानु ॥ २२ ॥

सकलराजमण्डल सिरै, सेवत जिन्हें सुचीशु।
तीर्थंकर तैसे भये, बहुरि और बाईसु ॥ २३ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर राजनिमुकुट अतुलबली अरिहंत ।
वैसे ही चौबीस ए, भये आपु भगवंत ॥ २४ ॥

सेवत जाहि मुनीश सुर प्रभुता कौ नाहिं पारु ।
जय जय श्री जिनराज जय, साशन को सिंगारु ॥ २५ ॥

तिनि तें पंचपन में तखत, सिरीपूजि सिरताजु ।
हेमविमल सूरीश्वर, जागे धरम जिहाजु ॥ २६ ॥

पर उपकारी परमगुरु बेतमाह शुभ बेस ।
अबू सैद सुलतान उनि प्रतिबोधित उपदेस ॥ २७ ॥

भये **कुशल माणिक्यभुव** पंडित तिनिके पाट ।
तैसे ही तिनिके तखत, **सहज कुशल** शुभवाट ॥ २८ ॥

जाकौ महिमा जगतमें को करि सकै सराहि !
तज्यो जेजिया ता बचन, साहिब बब्बर साहि ॥ २९ ॥

लाइक पुनि लछमीकुशल पदधर तिनिके पाट ।
देवकुशल तिनिके तखत, साधुनि कौ सम्राट ॥ ३० ॥

तिनिके पट्टांबर नरनि, धीर कुशल भये धीरु ।
कियो दूर कलिकलुषतम, बडे तपोबल वीरु ॥ ३१ ॥

गाजे तिनिके **गुण कुशल** अचल पट्टधर इन्द्र ।
शील सत्य तप जप सहित चतुर चातुरी चन्द्र ॥ ३२ ॥

वखत बली तिनिके तखत, भये **प्रतापगुण** भानु ।
श्री **प्रताप कुशल** सुगुह, साहि निलय सनमानु ॥ ३३ ॥

जाकै संपति जनम तैं सदा साथ कै साथ ।
बचनसिद्धि परसिद्धि सौं भई सिद्धि सब हाथ ॥ ३४ ॥

अेक समै **औरंग** सों, काहू करी पुकार ।
कही बात कछु सिद्धि की, सुनी साहि सिरदार ॥ ३५ ॥

पासि बुलाए पालखी, फौज भेज फुरमान ।
जबै जुरी चारों निजरि तबैं भयो गलतान ॥ ३६ ॥

पढ़े हिन्दवी पारसी, गुरुजु अकलि गुराब ।
पूछें दिल्लीपति प्रसन जिनके दये जुबाब ॥ ३७ ॥

और इष्ट बलिकर कही कितीक मन की बातु ।
प्रेम निजरि आलिमपना बसु को किय वरसातु ॥ ३८ ॥

दये गाम दशपंच पै लिये न लालच धारि ।
दे पालख अमोल दुति, विदा किये तिहि वारि ॥ ३९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रनवें तिनिके पाट अब जस रस कित्ति जिहाजु ।
भरे भारती भारती **कनककुशल** कविराजु ॥ ४० ॥

मानै जिन्है महाबली, महाराज अजमाल ।
अरु सूबे अजमेरु के मानै कै महिपाल ॥ ४१ ॥

जानै खान जिहाँ जिन्हे, ब्हादर बड़े नुबाब ।
सैदनि को मामू सुधर, गुण सौरभ गुलाब ॥ ४२ ॥

जूनागढ़ सूबै जबर, बाबी वंश नुबाब ।
सरेखान जिन सुगुरु कौ अधिक बढ़ायो आब ॥ ४३ ॥

अरे जती इक और सब, एकु और कौं आपु ।
पाट तपां पंच सद्धिओं, थप्यो तउ निजु थापु ॥ ४४ ॥

तदनु राउल **देसल** तनुज, कच्छपति **लखाकुमार** ।
गुरु कहि राखै गाम दे, परम मान करि प्यार ॥ ४५ ॥

कच्छ इंद आजै रहैं और उ सुधी अनेकु ।
अखिल शास्त्रवेत्ता अधिकु, एकु एकु तें एकु ॥ ४६ ॥

पूज्य महापुन्यासके, पुष्टि जदपि परिवार ।
तदपि समों कुंअरेस को, आनत मन इतबार ॥ ४७ ॥

करि **लखपति** तासौं कृपा, कह्यौ सरस यह काम ।
मंजुल **लखपति मंजरी**, करहु **नाम की दाम** ॥ ४८ ॥

तब सविता को ध्यान धरि, उदित कर्यो आरंभ ।
बाल बुद्धि की वृद्धि को, यह उपकार अदंभ ॥ ४९ ॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org